हर घंटे कुछ समय के लिए ट्रैफिक कण्ट्रोल द्वारा संकल्पों को शांत कर परमात्म याद में स्थित हों

मैं आत्मा दिव्य सितारे के रूप में मस्तक के बीच भृकुटि में विराजमान हूँ... मुझ सितारे से अनेक गुणों (ज्ञान, पवित्रता, शांति, सुख, आनंद, प्रेम व सर्व शक्तियों) की रंग-बिरंगी किरणें चारों ओर फैल रही हैं...अब मैं आत्मा सेकण्ड में इस देह और देह की दुनिया से अलग होकर अपने मीठे वतन परमधाम की ओर अपने प्यारे बाबा से मिलन मनाने के लिए राकेट की तरह तीव्र गति से जा रही हूँ...मैं आत्मा स्टार रूप में एक सेकेण्ड में पहुँच कर अपने स्वीट साईलेन्स होम में प्रवेश करती हूँ...जहाँ लाल प्रकाश के रुप में छटा महतत्व विराजमान है...जहाँ गहन शांति और पवित्रता ही पवित्रता है...यहाँ पर मेरे मीठे बाबा विराजमान है...जो सदैव सर्व शक्तियों और दिव्य गुणों को रंग-बिरंगी किरणों को प्राप्त करते ही मैं आत्मा भी बाबा समान मा. सागर बनकर मनुष्य साकार सृष्टि लोक पर दर्पण की भांति इन्हें शक्तियों और सर्व गुणों का दान कर रही हूँ...सभी आत्माएं भी सतयुग (नयी पावन, सुखदाई दुनिया) की स्थापना में सहयोगी बनती जा रही है...मैं आत्मा इस सुन्दर अनुभव का आनंद ले रही हूँ...।

स्वमान - मैं ईश्वरीय मर्यादाओं पर चलने वाली आत्मा हूँ।

अमृतवेले से लेकर जो ईश्वरीय मर्यादायें बनी हुई हैं और जानते भी हो कि सारे दिन में कितनी मर्यादाएं उल्लंघन की हैं। एक-एक मर्यादा के ऊपर प्राप्ति के मार्क्स भी हैं और साथ-साथ सिर पर बोझ का भी हिसाब है और जिन मर्यादाओं को साधारण समझते हो उन्हों में भी उनकी प्राप्ति और उनके बोझ का हिसाब है। संकल्प, बोल, समय और शक्तियों का खजाना इन सबको व्यर्थ करने से व्यर्थ का बोझ चढ़ता है। जैसे यज्ञ की स्थूल वस्तु, भोजन व अन्न अगर व्यर्थ गँवाते हो तो बोझ चढ़ता है ना ? ऐसे ही जब यह मरजीवा जीवन का समय बाप ने विश्व की सेवा-अर्थ दिया है, तो सर्वशक्तियां स्वयं के व विश्व के कल्याण अर्थ दी है, मन शुद्ध संकल्प करने के लिए दिया है और यह तन विश्व कल्याण की सेवा के लिए दिया है। आप सबने तन, मन और धन जो दे दिया है तो वह आपका है क्या ? जो अर्पण किया वह बाप का हो गया ना ? बाप ने फिर वह विश्व सेवा के लिए दिया है। श्रेष्ठ संकल्प से वायुमण्डल और वातावरण को शुद्ध करने के लिए मन दिया है, ऐसे ईश्वरीय देन को अर्थात ईश्वर द्वारा दी गई वस्तु को यदि व्यर्थ में लगाते हो तो बोझा नहीं चढ़ेगा ?

आजकल भी जड़ मूर्तियों द्वारा व मंदिरों में जो थोड़ा-सा प्रसाद भी मिलता है तो उसको कब व्यर्थ नहीं गँवाते हैं। अगर जरा-सा कणा भी पाँव में गिर जाता है, तो पाप समझ मस्तक से लगाकर स्वीकार करते हैं। अनेकों के मुख में डाल प्रसाद को सफल करने का पुरूषार्थ करेंगे और उसे व्यर्थ नहीं गँवायेंगे। यह स्वयं बाप द्वारा मिली हुई जो वस्तु मन व तन परमात्म-प्रसाद हो गया, क्या इसको व्यर्थ करने का बोझ नहीं चढ़ेगा ? जैसे समय की गति गहन होती जा रही है तो वैसे ही अब पुरूषार्थ की प्राप्ति और बोझ की गति भी गहन होती जा रही है। इसको ही कहा जाता है कि कर्मों की गति अति गुह्य है।

आओ बनें ब्रह्मा बाप समान फरिश्ता

प्रजापिता ब्रह्मा का 18 जनवरी, 1969 को अव्यक्तारोहण हुआ। उस रात्रि को उनका आत्मा रूपी हंस उड़कर नील गगन के पार अथवा प्रकाश के लोक में, अव्यक्त लोक में चला गया। प्रश्न उठता है कि उनके दिव्य पुरूषार्थ के ऐसे कौन से आलोक बिन्दु रहे होंगे जिनके द्वारा उन्हें उस अनुपम स्थिति की उपलब्धि हुई और शिवबाबा के अंग-संग रहकर सृष्टि संरचना के कार्य करने का परम सौभाग्य प्राप्त हुआ?

अगर उनके अलौकिक जीवन की शोभायात्रा पर दृष्टि डाली जाए तो उनके पुरूषार्थ की कई विशेषताएं सामने आती हैं, जिनमें से कुछ निम्नलिखित हैं:-

विदेह-स्थिति

सबसे पहली बात ये है कि उन्होंने देह और देही, रथ और रथी अथवा शरीर और आत्मा की भिन्नता का पाठ खूब पक्का कर लिया था। जैसे किसी सांसारिक आदमी को देह अभिमान का पाठ पक्का होता है, वैसे ही विदेह अवस्था अथवा आत्मिक स्थिति उनके लिए सहज स्वभाव हो गई थी। प्रारम्भ से उन्हें जबसे तारों की तरह आत्मा का ब्रह्मलोक से इस धरा पर आकर साकार रूप लेने का दिव्य साक्षात्कार हुआ था तथा उन्हें जबसे अपने काका मूलचंद की देह से आत्मा के निकलने का दृश्य दिखाई दिया था, तब से उन्होंने निष्ठापूर्वक यह अभ्यास करना प्रारम्भ कर दिया था कि "मैं आत्मा हूं, जसोदा 'आत्मा' है, राधिका 'आत्मा' है, सभी देहों में विराजमान आत्माएं हैं..."। अर्थात् हरेक देहधारी और मित्र संबंधी को उन्होंने आत्मिक दृष्टि से देखने का अभ्यास पूरा मन लगाकर करना शुरू कर दिया था और उस अभ्यास की परिपक्वता होने तक उन्होंने कभी भी अपने इस पुरूषार्थ को ढील नहीं दी थी, यहां तक कि जो कोई उनसे मिलने आता, न केवल वे उसे आत्मिक दृष्टि से देखते बल्कि उससे पूछते-"बच्चे, किससे मिल रहे हो? यह कौन है? क्या इसे पहचानते हो? क्या आपको यह याद है कि मैं एक आत्मा हूं?" वे प्राय: यह भी कहा करते थे कि "जब कभी आप एक-दूसरे से मिलो तो अभिवादन करते समय एक-दूसरे से कहो-शिवबाबा याद है?"

वे कहा करते-"बच्चे, एक-दूसरे के प्रति मित्रता निभाने की यही सच्ची रीति है कि एक-दूसरे को

'आत्मा' और 'परमात्मा' की याद दिलाओ। बच्चे, एक आंख में सदा मुक्ति और दूसरी आंख में जीवनमुक्ति रखो। यह देह तो कब्र दाखिल होने वाली है। इस क्षणभंगुर एवं नाशवान देह को देखते हुए भी इसके भान में न आओ। ये शरीर काम-विकार से पैदा हुआ है, पुरानी जुत्ती की तरह से है, इससे क्या दिल लगाना? बच्चे, अगर देह से दिल लगाओगे तो अपना स्वर्गिक राज्य-भाग्य गंवा बैठोगे। बच्चे, यह अंतिम समय है, अंत में तो भक्त भी 'हरि बोल-हरि बोल' का अभ्यास किया करते हैं। अत: आप भी शिवबाबा को याद करते रहो ताकि यह स्थिति पक्की हो जाए। इस देह में फंसे रहोगे तो फिर आत्मा उड़ नहीं सकेगी।'' तो जैसे हठयोग का अभ्यास करने वाले साधु सारा दिन गोबर-कड़ी जलाकर धूनी रमाए रहते हैं, बाबा 'आत्मा' और 'परमात्मा' ही की धुन जमाए रहते थे। इस प्रकार "आत्मा, आत्मा'' कहते-समझते वे हड्डी-माँस के कलेवर से तो पहले ही अलग हो चुके थे। हड्डियाँ तो वे सेवा में लगा चुके थे। तब वे फरिश्ते नहीं थे, तो क्या थे?

जैसे एक नवजात पक्षी उड़ने का अभ्यास करते-करते एक दिन उड़ जाता है और मुक्त होकर आकाश में विचरता और स्वतंत्रता की साँस लेता है, वैसे ही 'आत्मा हूं, आत्मा हूं...' की स्मृति रूपी पुरूषार्थ से एक दिन वह आत्मा ज्ञान और योग के पंख लिए नील गगन से भी पार उस चांदनी के जैसे प्रकाश वाले प्रकाश लोक में जा पहुंची। भक्त लोग किसी के शरीर छोड़ने पर प्राय: कहा करते हैं कि 'वह आत्मा प्रभु को प्यारी हो गई।' इस प्रकार वे भी सही अर्थ में प्रभु को प्यारे हो गए। प्रभु को प्यारे तो वे भी पहले भी थे क्योंकि उनके मन की लग्न तो उसी प्रभु के ही प्यार में मग्न रहती है।

कुछ भी नहीं चाहिए:-

उनके पुरूषार्थ में एक विशेषता ये भी थी कि उनकेक जीवन में न कोई मान-शान की इच्छा थी, न खान-पान की लालसा। न किसी से उनका लगाव था और न उनके लिए कोई आकर्षण का बिन्दु। "बस, मुझे कुछ भी नहीं चाहिए''-ऐसा उनके मन का दृढ़ भाव था। "पाना था जो पा लिया, और क्या बाकी रहा?'' यह स्वरालाप उनके मन की वाणी पर सतत्-निरंतर अंदर ही अंदर होता रहता था। उनकी श्वासों के स्वर इसी स्वर में समाए हुए थे। पैसे को तो वे हाथ में लेते ही नहीं थे। कोई महल-माड़ी, कोई विमान-गाड़ी या किसी शान-शौकत का स्पर्श भी उन्हें नहीं रहा था। सादगी की वे चैतन्य प्रतिमूर्ति थे। अत: पृथ्वी के आकर्षण तो मिट ही चुके थे।

अब घर चलना है, अब घर चलना है

वे इस भू-मंडल पर एक फरिश्ता तो पहले ही से भासित होते थे, क्योंकि पृथ्वी पर होते हुए भी उनके पाँव पृथ्वी पर नहीं थे। बस, "अब घर चलना है; अब घर चलना है..." यह नाद उनके मन रूपी तंबूरे पर बजता रहता था। इस दुनिया से तो उन्होंने जीवन रूपी जहाज का लंगर उठा ही लिया था। ऐसा लगता था कि वे केवल वत्सों को तैयार करने के लिए ही रूके हुए हैं वरना जहाज तो सामान से भर चुका था और इस दुनिया रूपी बंदरगाह से रवाना होने के लिए तैयार था। किसी ने उन्हें माना या न माना, पहचाना यान पहचाना, उनके रास्ते में रूकावट डाली या सहयोग दिया-इन सबसे पार, वे बेपरवाह बादशाह बन चुके थे।

हल्के-हल्के

इस प्रकार वे यहां रहते भी सदा यात्रा पर थे। वे यहाँ तो थे, परंतु यहां के नहीं थे और सभी प्रकार के फिक्र से फारिग होकर लाईट (लाईट) तो हो ही चुके थे। उन्होंने सब कुछ शिवबाबा पर छोड़ रखा था और शिवबाबा की चाबी से चलते थे। सारथी तो शिवबाबा ही था। वह जहां चाहे ले चले। बागडोर उसके हाथ में दे रखी थी। वे धरती के सब दृश्यों और रिश्तों से काफी ऊंचे उठ चुके थे। उन्हें 'त्राहि-त्राहि' करते हुए इस संसार पर दया आती थी इसलिए वे प्रेम और वरदान की वर्षा करते रहते थे।

रिश्ते नहीं रहे थे

उनके दैहिक तथा मानसिक रिश्तों की रस्सियाँ तो पहले ही से कट चुकी थीं। अत: जब रिश्ते पहले से ही नहीं रहे थे और धरती के आकर्षण भी पहले ही मिट चुके थे, तब फरिश्ता होकर उड़ने में क्या गुंजाईश रही होगी ? जैसे उड़ने वाला गुब्बारा कच्चे धागे से बँधे हुए होने पर बच्चों के मन को बहलाता है और फिर हवा का झौंका आता है और वह उस धागे को भी तोड़कर 'टा-टा' करते उड़ जाता है, वैसे ही कुछ थोड़े से हिसाब-किताब का कच्चा धागा अथवा बच्चों को तैयार करने की जिम्मेवारी शायद कुछ काल के लिए उन्हें रोके हुए थी। एक झौंका आने की जरूरत थी कि 'वो चले' ! हां, ऐसा ही तो हुआ।

सब कुछ बाबा का है; मेरा कुछ भी नहीं है

एक बात जो उनके मन में अमिट छाप की तरह अंकित थी, वह यह कि वे सब कुछ बाबा ही का

समझते थे। मालिक होते हुए भी वे बालक ही थे। उन्होंने कभी भी अपना तो कुछ समझा ही नहीं, तो जब उनका यह तन पहले ही से उनका नहीं रहा था, तब तो केवल 'आया परवाना और हुआ रवाना' वाली बात रह गई थी। शरीर के साथ संबंध तो उन्होंने पहले ही से 'नाममात्र' ही कर दिया हुआ था, अब तो केवल शिवबाबा की तरफ से यह इशारा ही होने की जरूरत थी कि 'अब चले आओ।' वरना 'हम तो सफर पर तैयार बैठे हैं' अथवा 'खुश रहो अहले वतन, हम तो सफर कर चले'-यही उनकी स्थिति थी। वे अन्य सबको भी कहा करते थे 'बच्चे, एवररेडी रहो।'

बाबा, बाबा

ये शिवबाबा को तो 'बाबा' कहते ही थे; अपने लिए भी 'मैं' शब्द की बजाय 'बाबा' शब्द का प्रयोग किया करते थे; उन्हें भी तो सभी 'बाबा' कहकर ही संबोधित करते थे न। अत: वह (शिव) भी बाबा, यह (ब्रह्मा) भी बाबा, तब अंतर ही कितना रह गया था? कभी वह बाबा, कभी यह बाबा और कभी दोनों बाबा! इस प्रकार 'बाबा...बाबा' कहते-कहते एक दिन ऐसा आया कि दोनों ने इकट्ठा रहने की ठान ली। ब्रह्मा बाबा के मन में यह भाव रहा होगा कि यद्यपि मन तो दोनों के मिले हुए हैं परंतु खुदा और खुदा दोस्त की यह दूरी और यह जुदाई कब तक? ब्रह्मा बाबा ने शिव बाबा को कह दिया होगा कि -'बाबा, बस अब मैं आ रहा हूं।' और भोले शिव बाबा तो कभी उनकी बात टालते ही नहीं थे। अत: शिवबाबा ने भी कह दिया होगा कि 'अच्छा तो फिर चले आओ!' फासला तो कोई पहले भी था नहीं, लेकिन अगर कुछ रहा भी होगा तो वह भी न रहा।

उड़ चले विहंग मार्ग पर

बाबा वैसे भी कहा करते कि ''यह रथ तो नंदीगण है; यह शिवबाबा का रथ है।'' कहने का भाव यह है कि शिवबाबा तो पहले ही उस रथ पर सवार रहते ही थे; उनके आते रहने से न केवल दोनों का संबंध अत्यंत घनिष्ठतामय हो गया था बल्कि इकट्ठा रहने का उन्हें ऐसा अभ्यास हो गया था कि आखिर वह दिन आ गया जब ब्रह्मा बाबा ने भी अपना रहन-बसेरा अव्यक्त लोक में ही बना लिया। आखिर यह 'रथ' तो वहां जा भी नहीं सकता था इसलिए इस 'रथ' को यहां छोड़कर 'रथी' अपने 'सारथी' के पास चला गया क्योंकि अब इस रथ की आवश्यकता ही नहीं रही थी; अब तो तीव्र-गामी, विहंग-मार्गी वाहन की आवश्यकता थी।

व्यर्थ और नकारात्मक की समाप्ति

यों उनके निकट जो लोग भी कभी बैठते थे, उन्हें पहले ही से यह अनुभव होता था कि कुछ शीतल सी झिलमिल-झिलमिल, कुछ भीनी-भीनी सी सुगंधी, कुछ सुख की रश्मियां उनके मन को भी सराबोर कर रही हैं। बाबा की उपस्थिति में उन्हें लगता कि उनके विकार शांत हो गए हैं, उनकी बुराईयाँ बंद हो गई हैं, उनकी कमजोरियाँ मिट सी गई हैं और उनके मन में यह आशा प्रदीप्त हो गई है कि वे भी एक अच्छे इंसान बन सकते हैं। कारण यह था कि ब्रह्मा बाबा कभी नकारात्मक रीति से सोचते ही नहीं थे। वे कभी किसी के अवगुणों का चिंतन करते ही नहीं थे। उनका समय, उनके संकल्प, उनकी शक्तियाँ कभी बेकार की ओर जाती ही नहीं थीं। वे तो वेस्ट को बैस्ट, अथवा निकृष्ट को श्रेष्ठ और व्यर्थ को समर्थ बनाने वाले थे। वे बिगड़ी को संवारने वाले थे, तब उनकी उपस्थिति में दूसरों का मन भी अपनी कमी और कमजोरियों से हटकर आत्मविश्वास और उत्साह से भरपूर क्यों न हो जाती ? अब उनके संस्कारों तथा व्यवहारों में तो व्यर्थ की समाप्ति और सामर्थ्य की प्राप्ति हो ही गई थी और फरिश्तों का यही तो विशेष लक्षण है कि उनमें व्यर्थ और नकारात्मक नहीं होता। अत: पूर्णता को प्राप्त कर वे पुनीत धाम को चले गए। वे समर्थ बन गए, तो फिर सामर्थ्य उन्हें ऊंचाईयों पर ले गई।

ब्रह्मा अव्यक्त क्यों हुए . . . ?

स्वयं ब्रह्मा बाबा ने भी व्यक्त से अव्यक्त होने के पीछे छिपे रहस्यों को समय-समय पर स्पष्ट किया है। उन्होंने कहा है 'वत्सों, आपको व्यक्त से अव्यक्त बनाने के लिए ही मैं अव्यक्त हुआ हूं। क्या आप व्यक्त ही बने रहोगे ? देखो, अब इस धरती को आकाश पुकार रहा है! आप भी मेरे पीछे-पीछे चले आओ। क्या व्यक्त लोक इतना अच्छा लगता है कि उसको छोड़ना नहीं चाहते ?

वत्सों, अगर मैं व्यक्त बना रहता तो आपको अव्यक्त बनने का अभ्यास कैसे होता ? आप मुझे अपने पास बुलाते हो, ये बुलाना भी कब तक ? क्यों नहीं मेरे पास यहां चले आते हो ? क्या प्रीति की रीति निभाना नहीं आता ? बाप वहां और बच्चे यहां ! क्या ये अच्छा लगता है ? क्या यह जुदाई पसंद है ? क्या बाप की पुकार सुनाई नहीं देती ? क्या अभी पंख नहीं लगे हैं ? क्या उड़ना नहीं सीखे हो ? क्या उड़ती कला को प्राप्त नहीं हुए ?

बाबा के इस प्रकार के बोलो से स्पष्ट होता है कि हमें व्यक्त भाव से निकालकर अव्यक्त भाव में स्थित करने के लिए ही बाबा ने ये उड़ान भरी है। अगर हम उन्हें साकार रूप में ही देखते रहते तो हमारी बुद्धि सूक्ष्म की ओर कैसे जाती ? आखिर तो यहां से जाना ही है, उस तक जाने के लिए जम्प भी लगाना ही है। अत: बाबा हमें वहाँ हमारी आगवानी करने के लिए ही पहले गए हैं।

बच्चे कहते हैं-''बाबा, हम आपसे मिलें कैसे ? आप तो साकार में हैं नहीं जबकि हम साकार में हैं ? बाबा, आप हमको छोड़कर क्यों चले गए ?'' बाबा कहते हैं-बच्चे, अगर मैं साकार में यहां होता तो इस बढ़ती हुई संख्या में मुझसे मिलने का तुम्हारा नम्बर कब आता और तुम कितनी देर मुझसे मिल पाते ? रात को तो तुम सो जाते या मैं भी सो जाता और दिन में तुम सब में से कौन, कितने मुझसे कैसे मिल सकते ? तब तो भीड़ लग जाती, बात करने का मजा भी न रहता। गाड़ियों में आने की रिजर्वेशन भी न मिलती या कभी शरीर और स्वास्थ्य साथ न देता। कभी मिलाने वाले भी मना कर देते और अब तो देखो, इन सब रूकावटों और परेशानियों से फारिग होकर जब चाहो मुझसे मिल सकते हो और जितना समय चाहो मेरे पास रह सकते हो। यहां मेरे कमरे की दीवारें नहीं हैं। यहां पहुंचने के लिए केवल बुद्धि के विमान से आना होता है; दूसरे विमान का खर्च भी नहीं करना पड़ता। धक्कापेल में धक्का भी नहीं खाना पड़ता। बस, संकल्प करो और पहुंच जाओ। अत: बच्चे, मैंने तो मिलन की रीति आपके लिए और भी सहज ही कर दी है। बस, केवल उड़ना सीखो, तो पहुंचने में

कोई देर नहीं, कोई खर्च नहीं, कोई रूकावट नहीं।

बाबा कहते हैं-''बच्चे, अगर मैं व्यक्त से अव्यक्त न बनता तो आपको अव्यक्त का अनुभव कैसे कराता ? पहले मैं अनुभव करूं, तभी तो आपको अनुभव करा सकूं। आगे इंजन चले, तभी तो पीछे गाड़ियाँ चलेंगी। अत: आपको सूक्ष्म बनाने ही के लिए मैं यहां आया हूं परंतु आप इतनी देर क्यों लगा रहे हो ? बच्चे, अब जल्दी करो ताकि घर चलें। क्या अभी इस दुनिया से थके नहीं हो ? अब छोड़ो इस कांटों की दुनिया को। आप बच्चों के कारण ही मैं भी रूका हुआ हूं। अभी परमधाम का गेट भी नहीं खुला क्योंकि मेरा वचन है कि आपके साथ ही चलूंगा। तो, देखो, आपके कारण से मुझे भी देर हो रही है। बोलो बच्चे, कब परमधाम का गेट खोलूं या चलने का इरादा ही नहीं है ?''

अन्यश्च, बाबा कहते हैं ''बच्चे, आप उल्हना देते हो कि बाबा, आप हमको छोड़कर अव्यक्त वतन में चले गए! बाबा, आप हमें यहां छोड़ गए!!''

''परंतु वास्तव में मैं तो यहां से आपकी ही सेवा में लगा रहता हूं। आपको छोड़कर कहीं गया थोड़े ही हूं। आपके पुरूषार्थ को तेज करने, आपके संस्कारों के परिवर्तन में तीव्र गति लाने में ही तो मैं लगा रहता हूं। इस पर भी आप कहते हो कि बाबा, आप सूक्ष्म वतन में क्या करते हैं ? बाबा, आप वहां पर क्यों चले गए ? आप जल्दी-जल्दी अपने संस्कारों को बदलो और अव्यक्त स्थिति में टिक जाओ तो, बस, चलें वतन की ओर।''

पुन: बाबा समझाते हैं ''देखो बच्चे, ये कहा गया है ना कि ब्रह्मा ने संकल्प द्वारा सृष्टि रची। अत: उस बेहद की सेवा के लिए मुझे हद वाली दुनिया को छोड़कर यहां आना पड़ा है। उस स्थूल देह में रहते हुए मैं देश-देशांतर के बच्चों की सेवा कैसे कर सकता ? वहां तो रात भी है, बरसात भी; दिन भी है और धूप भी।'' देशों की हदों को पार करने पर प्रतिबंध भी हैं और आने-जाने के लिए प्रबंध भी चाहिए परंतु यहां तो उन सबसे उठकर जहां चाहूं, जब चाहूं, संकल्प से ही पहुंच जाता हूं या बैठे हुए भी सेवा करता हूं। वत्सो, अगर मैं सारी सृष्टि की आत्माओं की सेवा न करूं तो ये 'विश्व पिता' का कार्य कैसे कहलाएगा ? जब शिवबाबा ने नाम 'ब्रह्मा' रखा है और पहले दिन से ही कह दिया था कि तुम्हें नई सृष्टि रचनी है', तो बाप का दिया हुआ वो कर्तव्य तो इसी विधि से निभाना ही होगा और अगर सतयुगी सृष्टि न रचूं तो आपके पुरूषार्थ की प्रालब्ध के लिए तैयारी कैसे होगी ? अगर सृष्टि

को स्वर्ग न बनाऊं तो आपको वर्सा क्या दूंगा ? अत: मैं तो आपकी ही सेवा में लगा हूं क्योंकि इस बाप का वायदा है कि आपको स्वर्ग का राज्य भाग्य दूंगा। मैं बेहद की सेवा करूंगा तभी तो आपको बेहद का राज्य मिलेगा। क्या आपको बेहद का राज्य भाग्य नहीं चाहिए ? न चाहिए हो तो बता दो।''

बाबा कहते हैं-''देखो, सूर्य छिपता है तब संसार के लोगों को चांद और तारों की झिलमिल दिखाई देती है। जब तक सूरज ही सामने रहेगा, तब चांद और तारों की छटा कब छटकेगी ? उन्हें अवसर ही कब मिलेगा ? अत: अब आप बच्चों का स्टेज पर अत्यंत सुंदर पार्ट है। अब आप चमको और संसार को प्रकाश दो। इस कारण ही थोड़ी देर के लिए बाप ने थोड़ा किनारा किया है। ये थोड़ा सा समय पार्ट बजाना ही होगा।''

इस प्रकार मीठे बाबा मीठे-मीठे शब्दों में मीठे-मीठे बच्चों को मीठी-मीठी बातें बताते हुए, मिश्री से भी मीठा बना रहे हैं और व्यक्त से अव्यक्त होने के तथा आगम-निगम के छिपे हुए भेद भोले बनकर बता रहे हैं।

अब अव्यक्त बनने का पुरूषार्थ करने का समय यज्ञपिता ब्रह्मा बाबा का पुरूषार्थ तो तीव्र गति से चल ही रहा था। जहाज भी तो एयरपोर्ट पर पहले तेज चलता है फिर और तेज होता जाता है और तेज होते-होते आखिर उड़ जाता है और पृथ्वी पर खड़े लोग देखते ही रह जाते हैं। ऐसे ही पिताश्री ने पुरूषार्थ कर परवाज कर लिया। आखिर जब वे सब दिव्यगुणों से युक्त हो गए, पवित्रता की छटा छलकने लगी, वे पूर्णत: की स्थिति को प्राप्त होने पर आए तो उनका उस शरीर को छोड़ना स्वाभाविक ही था क्योंकि वो शरीर उस पूर्ण आत्मा के लिए तब उपयुक्त ही नहीं था। पूर्ण के लिए तो पूर्ण ही शरीर चाहिए; इसलिए वे फरिश्ता बन गए। अब इस अव्यक्त वर्ष में हमें भी प्रेरणा लेकर अव्यक्त बनने के पुरूषार्थ की गति को तीव्र करना चाहिए। यही हमारे लिए इस रजत जयंती का संदेश है कि पूर्ण चांदनी के समान हमारी आत्मा की चांदनी हो और बाप की जयंती के साथ हम जय-विजय प्राप्ति की तैयारी करें।

जनवरी मास में बाप समान बनने की तपस्या

जनवरी मास हम सब साधकों के लिए अलौकिक प्रेरणा लेकर आता है। इसी मास की 18 जनवरी के पावन दिन पर इस सृष्टि की सर्व महान आत्मा प्रजापिता ब्रह्मा ने अखण्ड तपस्या के बल पर अपनी सम्पूर्ण अवस्था को प्राप्त किया था। उनका अंतिम वर्ष 1968 निरंतर योगयुक्त अवस्था में बीता था। वे अधिकतर समय एकांत में बिताया करते थे। उनकी झोपड़ी उनकी महान तपस्या की तरंगे बिखेरती थी। आओ हम सब भी इस मास को श्रेष्ठ अनुभवों से भरपूर कर दें।

इस मास के चार सप्ताहों में श्रेष्ठ पुरूषार्थ के लिए हम पाँच बातों का एक संक्षिप्त प्लान लिख रहे हैं -

इससे पूर्व कुछ बातों पर सभी राजयोगी ध्यान दें। एक भी दिन अमृतवेला मिस नहीं करना है। उठते ही सर्वप्रथम स्वयं को सुंदर विचारों से भरपूर करें, फिर स्वमान का अभ्यास करके पांच बार, पांच स्वरूपों का करें। वे पांच स्वरूप हैं -आनादि-आत्मिक स्वरूप, आदि का देव-स्वरूप, मध्य का पूज्य स्वरूप, संगमयुग का ब्राह्मण स्वरूप व अंत का फरिश्ता स्वरूप। एक-एक स्वरूप का चिन्तन करते हुए अपने उस स्वरूप का अवलोकन करें।

हो सके तो पूरा मास मौन रखें, अन्यथा सप्ताह में दो दिन मौन रखें या चार घण्टे सबेरे व चार घण्टे शाम को मौन रखें व मौन रखकर स्वमान का व अशरीरीपन का अभ्यास करें।

चारों सप्ताह का पुरूषार्थ इस तरह करें। अपना पाँच बातों का एक चार्ट बना लें -

प्रथम सप्ताह में... (1) मुझे ये देह छोड़कर अब घर जाना है...ये विशाल नाटक अब पूरा होने को है ...(सारे दिन में दस बार)। (2) 'मैं इस

धरा पर महान आत्मा हूँ -इस स्वमान का अभ्यास करें, (प्रतिदिन पच्चीस बार)। (3) इस विश्व-ड्रामा को साक्षी होकर देखना (दिन में पांच बार)। (4) धारणा -सारा दिन सरल चित्त होकर रहना। (5) पाँच अच्छे विचार लिखना।

दूसरे सप्ताह में... (1) शिव बाबा परमधाम से नीचे उतर रहा है और मेरे सिर के ऊपर छत्रछाया बन गया है..(दिन में बीस बार)। (२) मैं मा.सर्वशक्तिवान हूँ -(इस स्वमान का अभ्यास दिन में पच्चीस बार करें)। (३) सारा दिन धारणा करेंगे ..इच्छा मात्रम अविद्या। (४) सारे दिन में पांच बार सबको आत्मा देखने का अभ्यास करें। (5) स्वमान के पच्चीस प्वाइंट्स लिखें।

तीसरे सप्ताह में - (1) आत्मा बनकर परमधाम में जाकर बाबा को टच करना, कुछ देर वहाँ रहना, फिर देह में प्रवेश करना -यह रूहानी ड्रिल बार-बार करना। (2) मैं विजयी रत्न हूँ -इस स्वमान का अभ्यास दिन में पच्चीस बार करना। (3) अनासक्त वृत्ति -यह धारणा अपनाना। (4) अपने महान लक्ष्य को स्मृति में रखना। (5) बाप समान कैसे बनें -इस पर चिन्तन करके सोलह बातें लिखना।

चौथे सप्ताह में ..(1) निरंतर सर्वशक्तिवान की शक्तियों की किरणें मुझ पर पड़ रही हैं -सारे दिन में दस बार ये अभ्यास करें। (2) मैं पूर्वज आत्मा हूँ -मुझे सबकी पालना करनी है -इस स्वमान का अभ्यास सारे दिन में पच्चीस बार करें। (3) सर्व के प्रति स्नेह व शुभभावना -इस धारणा को अपनायें। (4) मैं फरिश्ता सो देवता बनने वाला हूँ (इस स्वरूप का अभ्यास दस बार सारे दिन में करें) (5) खुशी में रहने के बारह प्वाइंट्स लिखें।

इस तरह यदि आप जनवरी मास में साधना करेंगे तो यह अनुभव पूरे वर्ष की साधनाओं में मुख्य भूमिका निभायेगा। तो आओ, सम्पूर्ण दृढ़ता व आत्मविश्वास के साथ लगें इस महान तपस्या में।